

खेत की बात/फसल विधि : शरद में बीज, सही समय, सही मिट्टी

आदिवासी नक्षत्र-ज्ञान व रबी की तैयारी वागड़ क्षेत्र के आदिवासी समुदायों के लिए एक जीवित परंपरा यह वह समय है जब बारिश धीरे- धीरे विदा लेने लगती है, पर पूरी तरह जाती नहीं-कभी तेज धूप आती है तो कभी अचानक बादल धिर आते हैं।



खेतों में खरीफ की फसल – मक्की, उड़द, मूँग-अभी खड़ी है, पर घर के बुजुर्ग किसान की निगाह अब आने वाले रबी सीजन पर टिकने लगती है। यही वह महीना है जब रात का आकाश धीरे-धीरे साफ होने लगता है और गाँव के अनुभवी लोग शाम ढलते ही घर के बाहर बैठकर आकाश की तरफ देखना शुरू कर देते हैं। वे जानते हैं कि अगले डेढ़-दो महीने में गेहूँ, चना और सरसों बोने का समय आएगा, और उस समय की तैयारी अभी से शुरू करनी है। सितम्बर के महीने में आकाश क्या संकेत देता है, आदिवासी समुदाय इसे कैसे पढ़ते हैं, और यह ज्ञान रबी की बुआई की तैयारी से किस तरह जुड़ा है।

सितम्बर को खगोल-दृष्टि से ‘संधि काल’ कहा जा सकता है- मानसून और शरद ऋतु के बीच का पुल। महीने की शुरुआत में आकाश अक्सर धुंधला रहता है, बादल छाए रहते हैं, और तारे साफ नहीं दिखते। लेकिन जैसे-जैसे महीना आगे बढ़ता है, खासकर आखिरी हफ्तों में, बारिश के दिन कम होने लगते हैं और रातें साफ होने लगती हैं। बौसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, रतलाम, झाबुआ, दाहोद जैसे पहाड़ी-पठारी इलाके में यह बदलाव और भी साफ दिखाई देता है। बादल छँटते ही आकाश एकदम निखर जाता है – क्योंकि यहाँ न तो बड़े शहरों जैसी रोशनी का जमावड़ा है, न प्रदूषण की मोटी परत। इसी वजह से यहाँ के किसान सदियों से आकाश को बहुत बारीकी से पढ़ते आए हैं।

आकाश की स्वच्छता बढ़ना – जिस रात बादल छँटकर तारे साफ चमकने लगें, उसे बुजुर्ग किसान मानसून की विदाई का पहला संकेत मानते हैं। यह देखा जाता है कि लगातार कितनी रातें आकाश साफ रहा – अगर तीन-चार रातें लगातार तारे स्पष्ट दिखें, तो यह माना जाता है कि अब बारिश की मुख्य झड़ी खल हो चुकी है।

हवा की दिशा में बदलाव – सितम्बर के अंत तक हवा का रुख बदलने लगता है। जब रात के समय ठंडी हवा उत्तर-पूर्व की तरफ से चलने लगे, तो इसे भी आकाश के साफ होने और मौसम बदलने के संकेत के साथ जोड़कर देखा जाता है।

शाम के आकाश में कुछ तारा- समूहों का ऊँचा उठना – सितम्बर के अंत और अक्टूबर की शुरुआत में सूर्यास्त के बाद पूर्वी आकाश में कुछ पहचाने जाने वाले तारा-समूह ऊँचे उठते दिखाई देने लगते हैं। यही वह समय होता है जब बुजुर्ग किसान कहते हैं – **“अब आसमान बदल री (बदल रहा है), खेत की तैयारी शुरू कर दो।”**

आदिवासी नक्षत्र-ज्ञान – सितम्बर में क्या देखा जाता है –वागड़ क्षेत्र के अन्य आदिवासी समुदायों में सितम्बर के महीने को **“देखने और तौलने”** का महीना माना जाता है – यानी अभी बुआई नहीं होती, पर आकाश और धरती दोनों को ध्यान से परखा जाता है।

आकाश का अवलोकन – रात को खुले आसमान के नीचे बैठकर यह देखा जाता है कि कौन से तारे किस दिशा में और किस चाँद की स्थिति। सितम्बर में आने वाली अमावस्या और उसके बाद की पूर्णिमा (जिसे कई इलाकों में भादो-अश्विन की संधि का चंद्र कहा जाता है) को खास तौर पर देखा जाता है। यह माना जाता है कि इस दौर का चाँद अगर साफ और चमकीला दिखे, तो आने वाला रबी सीजन अच्छी उपज वाला रहेगा।

धरती और हवा का मेल – आकाश के साथ-साथ यह भी देखा जाता है कि खेत की मिट्टी कितनी सूख चुकी है, कितनी नमी बाकी है, और सुबह की ओस कैसी पड़ रही है। आदिवासी किसानों के लिए आकाश-ज्ञान अकेला निर्णय नहीं होता – यह धरती के संकेतों के साथ मिलकर पूरा होता है।

सितम्बर से रबी की तैयारी तक का समन्वय – रबी की मुख्य बुआई अक्टूबर के अंत से नवम्बर तक होती है, लेकिन उसकी नींव सितम्बर में ही रखी जाती है। इसी महीने में आकाश-पठन के आधार पर कई महत्वपूर्ण फैसले लिए जाते हैं।

खेत जोतने का समय तय करना – जब आकाश लगातार साफ दिखने लगे व बारिश की सम्भावना कम हो जाए, तभी बुजुर्ग किसान खेत जोतने की सलाह देते हैं। बहुत जल्दी जोतने पर मिट्टी में नमी ज्यादा रहती है और जुताई ठीक से नहीं हो पाती बहुत देर करने पर बीज बोने का सही समय निकल जाता है। इसलिए आकाश का स्थिर और साफ रहना एक भरोसेमंद संकेत माना जाता है।

बीज छँटने और उपचार की शुरुआत – सितम्बर के अंत तक घरों में अगले सीजन के लिए बचाकर रखे गए गेहूँ, चना और सरसों के बीज निकाले जाते हैं, छँटे जाते हैं और परंपरागत तरीकों से (जैसे नीम की पत्तियों या राख के साथ) सुरक्षित किया जाता है। यह काम आकाश के साफ होने के साथ-साथ शुरू होता है, क्योंकि सूखा और साफ मौसम बीज सुखाने के लिए जरूरी होता है।

गाँव में सामूहिक चर्चा – सितम्बर के आखिरी हफ्तों में कई गाँवों में अनौपचारिक रूप से बुजुर्ग किसान इकट्ठा होकर आकाश के अवलोकन साझा करते हैं और आपस में तय करते हैं कि अगले महीने की किस तारीख के आसपास खेत जोतना और बुआई शुरू करनी है। यह निर्णय पूरे गाँव के लिए एक साझा दिशा तय करता है, ताकि सिंचाई के साधन और मेहनत का बँटवारा भी सही ढंग से हो सके।

पशुधन और चारे की व्यवस्था – सितम्बर में आकाश के संकेतों के साथ-साथ यह भी देखा जाता है कि खरीफ की फसल कब तक कटेगी, ताकि उसके दूँठ और बचे हुए चारे का इस्तेमाल पशुओं के लिए और अगली फसल की तैयारी के लिए किया जा सके।

परम्परागत कृषि विज्ञान के साथ तालमेल – यह जरूरी है कि हम इस परंपरा को न तो आँख मूँदकर पूरी तरह वैज्ञानिक सत्य मान लें, न ही इसे केवल पुरानी रीत कहकर नकार दें। सही रास्ता संतुलन का है। आधुनिक कृषि विज्ञान हमें सटीक मौसम पूर्वानुमान, मिट्टी की जाँच और बीज की उन्नत किस्में देता है। वहीं आदिवासी नक्षत्र-ज्ञान हमें दशकों के स्थानीय अनुभव और प्रकृति के साथ गहरे जुड़ाव की समझ देता है। सितम्बर के महीने में जब बुजुर्ग किसान आकाश के साफ होने का संकेत देखते हैं, तो उसी समय अगर मौसम विभाग का पूर्वानुमान भी देख लिया जाए कि आने वाले दिनों में कोई देर से आने वाला मानसूनी दौर तो नहीं तो निर्णय और भी भरोसेमंद बन जाता है।

समुदाय के लिए व्यावहारिक सुझाव – हर रात आकाश देखने की आदत डालें-महीने के अंत तक यह नोट करें कि कब से आकाश लगातार साफ रहने लगा है। यही जुताई शुरू करने का प्राकृतिक संकेत है। बुजुर्गों के साथ बैठकें करें – गाँव के अनुभवी किसानों को इकट्ठा कर आकाश और मौसम पर चर्चा करें, और उनकी बातों को नोट या रिकॉर्ड करके रखें ताकि यह ज्ञान सुरक्षित रहे।

बीज की छँटाई अभी से शुरू करें – सूखे और साफ दिनों का फायदा उठाकर बीज को अच्छी तरह सुखाएँ और परंपरागत तरीकों से सुरक्षित करें। मौसम विभाग का पूर्वानुमान भी साथ में देखें नक्षत्र-संकेत और आधुनिक पूर्वानुमान दोनों को मिलाकर निर्णय लें, ताकि अचानक की मौसमी घटना से बचाव हो सके।

युवाओं को साथ बिटाएँ – शाम को आकाश देखते समय बच्चों और युवाओं को भी बुलाएँ, तारों के नाम और संकेत बताएँ, ताकि यह ज्ञान अगली पीढ़ी पहुँचे। खेत और पशुधन की तैयारी साथ- साथ करें – खरीफ की कटाई की योजना बनाने समय रबी की जुताई का समय भी ध्यान में रखें, ताकि मेहनत और संसाधन का सही बँटवारा हो सके। जब खरीफ की फसल अभी खेत में खड़ी है, पर निगाहें पहले से ही आने वाले रबी सीजन पर टिकी हैं। इसी महीने में आकाश धीरे-धीरे अपना मानसूनी आवरण उतारता है और साफ होने लगता है, और यही साफ होता आकाश बुजुर्ग किसानों के लिए एक भरोसेमंद पंचांग बन जाता है। यह ज्ञान सदियों के अवलोकन से गढ़ा गया है और आज भी उसना ही व्यावहारिक है जितना पहले था-बशर्ते इसे सही सम्मान मिले, आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़ा जाए, व अगली पीढ़ी तक सहेज कर पहुँचाया जाए। जब सितम्बर की साफ होती रातों में आकाश तारों से भरता है, तो यह सिर्फ एक सुंदर दृश्य नहीं-यह उस पल की शुरुआत है जब बौसवाड़ा के खेत फिर से जागने की तैयारी करते हैं।



बच्चों का स्वास्थ्य/पोषण : हर मौसम की थाली, स्वस्थ बचपन की खुशहाली

हमारे आसपास की प्रकृति हर मौसम के साथ अपना रंग व रूप बदलती है। खेतों में फसलें बदलती हैं, पेड़ों पर नए फल आते हैं, जंगलों में अलग-अलग वन उपज उपलब्ध होती है और हमारे घरों की रसोई भी इन बदलावों के साथ अपना स्वरूप बदलती है। कभी हरी पत्तेदार सब्जियाँ थाली का हिस्सा बनती हैं, तो कभी कंद-मूल, अनाज और मौसमी फल। यही हमारी स्थानीय खाद्य संस्कृति की खूबसूरती है हर मौसम अपने साथ अलग भोजन और अलग स्वाद लेकर आता है। बदलती जीवनशैली और बाजार पर बढ़ती निर्भरता के कारण हमारी भोजन की आदतों में भी बदलाव आया है। स्थानीय और पारंपरिक खाद्य पदार्थों की जगह पैकेट वाले और तुरंत उपलब्ध होने वाले खाद्य पदार्थ हमारी रोजमर्रा की थाली में जगह बनाने लगे हैं। इसका असर बच्चों की भोजन संबंधी आदतों पर भी दिखाई देता है। ऐसे में अपनी थाली को फिर से पहचानना जरूरी है – एक ऐसी थाली, जो स्थानीय, मौसमी और विविध हो तथा बच्चों के स्वस्थ विकास का आधार बने।

बच्चों का स्वास्थ्य : केवल पेट भरने से आगे बच्चों के लिए भोजन केवल भूख मिटाने का माध्यम नहीं है। बचपन शरीर और मस्तिष्क के विकास की महत्वपूर्ण अवस्था है, इसलिए इस दौरान पर्याप्त और विविधतापूर्ण पोषण की जरूरत होती है। अनाज से मिलने वाली ऊर्जा, दालों और फलियों से मिलने वाला प्रोटीन तथा सब्जियों और फलों से मिलने वाले विभिन्न विटामिन और खनिज बच्चों के समग्र पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए बच्चों की थाली को केवल इस नजर से देखना पर्याप्त नहीं कि बच्चे ने खाना खाया या नहीं। यह भी देखना जरूरी है कि उसकी थाली में कितनी विविधता है और उसमें स्थानीय व मौसमी खाद्य पदार्थों की कितनी जगह है।

हर मौसम की अपनी थाली – हमारे पारंपरिक खान-पान में मौसम के अनुसार भोजन का विशेष महत्व रहा है। अलग-अलग मौसम में उपलब्ध फसलें, सब्जियाँ, फल और वन उपज हमारी थाली का हिस्सा बनते रहे हैं। बरसात में खेत और आसपास की प्रकृति हरियाली से भर जाती है। इस मौसम में उपलब्ध स्थानीय हरी पत्तेदार सब्जियाँ और अन्य मौसमी खाद्य पदार्थ भोजन में विविधता लाते हैं। साथ ही भोजन की स्वच्छता और सुरक्षित पानी पर ध्यान देना भी जरूरी होता है। शरद ऋतु में मौसम में बदलाव दिखाई देने लगता है। इस समय उपलब्ध ताजा और मौसमी खाद्य पदार्थों को बच्चों के भोजन में शामिल करना उनकी थाली को विविध बनाने का एक अच्छा अवसर है। सर्दियों में कई प्रकार की हरी सब्जियाँ, स्थानीय अनाज, दालें, बीज और अन्य खाद्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं। पारंपरिक रूप से इस मौसम में बनाए जाने वाले स्थानीय व्यंजन भोजन को स्वाद और विविधता दोनों देते हैं।गर्मी में शरीर को पर्याप्त पानी और तरल पदार्थों की आवश्यकता होती है। स्थानीय रूप से उपलब्ध मौसमी फलों और पारंपरिक पेय पदार्थों के साथ बच्चों को पर्याप्त सुरक्षित पानी देना भी महत्वपूर्ण है।



भी बदलाव आता था। आज बदलती जीवनशैली के बीच कई स्थानीय खाद्य पदार्थ और पारंपरिक व्यंजन हमारी रोजमर्रा की थाली से दूर होते जा रहे हैं। फिर भी परिवारों की स्मृतियों में ऐसे अनेक स्वाद और व्यंजन आज भी मौजूद हैं, जो किसी मौसम, खेत या बचपन की याद से जुड़े हैं।

किसी बच्चे की थाली में रखा स्थानीय अनाज, घर की बाड़ी से आई सब्जी या परिवार की पुरानी रेसिपी केवल एक खाद्य पदार्थ नहीं है। उसके पीछे खेत और मौसम से जुड़ा अनुभव, परिवार की स्मृतियों और पीढ़ियों से आगे आता हुआ स्थानीय ज्ञान भी है। **पैकेट से ज्यादा जरूरी है अपनी थाली की पहचान** – आज बच्चों के सामने भोजन के कई विकल्प मौजूद हैं। बाजार में उपलब्ध आकर्षक पैकेजिंग और विज्ञापन उन्हें आसानी से प्रभावित करते हैं। इसके बीच घर के स्थानीय भोजन को बच्चों की पसंद और स्वाद के अनुसार तैयार करना और उसकी पहचान बनाए रखना महत्वपूर्ण हो जाता है। कई बार हमारी अपनी थाली में ही वह विविधता मौजूद होती है, जिसे हम बाजार में खोज रहे होते हैं। स्थानीय अनाज, दालें, मौसमी सब्जियाँ, फल और पारंपरिक खाद्य पदार्थ बच्चों के भोजन को विविध बनाने के साथ उन्हें अपने स्थानीय भोजन से भी जोड़ते हैं।

सामाजिक मुद्दा (पलायन/बाल विवाह/बाल मजदूरी) : पितृपक्ष में भी बिक रहा बचपन

शीर्षक-पितृपक्ष में भी बिक रहा बचपन

01 पृष्ठभूमि – पितृपक्ष भारतीय संस्कृति में पूर्वजों के प्रति श्रद्धा, स्मरण और कृतज्ञता व्यक्त करने का महत्वपूर्ण अवसर है। इस अवधि में परिवार अपने दिवंगत पूर्वजों का स्मरण करते हैं और उनकी आत्मा की शांति के लिए तर्पण, श्राद्ध एवं अन्य पारंपरिक अनुष्ठान करते हैं। यह केवल धार्मिक परंपरा नहीं, बल्कि परिवार, पूर्वजों और अपनी जड़ों से जुड़े रहने की एक सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है।

आदिवासी समुदायों में भी पूर्वजों और प्रकृति के साथ गहरा संबंध देखने को मिलता है। राजस्थान, मध्य प्रदेश और गुजरात सीमा से सटे क्षेत्र में निवास करने वाले आदिवासी समाज के समुदाय में पूर्वजों की स्मृति, सामुदायिक परंपराएं, स्थानीय देवी-देवताओं और प्रकृति के प्रति सम्मान उनके दैनिक जीवन का हिस्सा रहे हैं। हालांकि, अलग-अलग आदिवासी समुदायों में इन परंपराओं के स्वरूप और मान्यताओं में काफी विविधता देखी जा सकती है। लेकिन सबके लिए इस पितृपक्ष के समान महत्व को देखा और समझा जा सकता है।

क्षेत्र के इस सांस्कृतिक महत्व और सामुदायिक जीवन के बीच एक दूसरा पक्ष भी है-आर्थिक असुरक्षा और आजीविका का संकट। पितृपक्ष जैसे अवसरों पर बढ़ने वाली सामाजिक और पारिवारिक आवश्यकताएं गरीब परिवारों पर अतिरिक्त आर्थिक दबाव डाल सकती हैं। जब परिवार के पास पर्याप्त संसाधन नहीं होते, तो परिवार के मुखिया और सभी सदस्यों पर इस दबाव का प्रभाव देखने को मिलता है और सबसे गहरा प्रभाव बच्चों के जीवन पर पड़ता है।

1.1 पितृपक्ष क्या है व आदिवासी क्षेत्र में इसका क्या महत्व है?

पितृपक्ष सामान्यतः भाद्रपद/आश्विन कृष्ण पक्ष की अवधि है, जिसे पूर्वजों के स्मरण और उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। परिवार अपने पूर्वजों को परंपरा के अनुसार तर्पण, श्राद्ध तथा अन्य धार्मिक कर्तव्यों के द्वारा उनकी पूजा करते हैं और इस प्रकार उन्हें याद करते हैं। इसका उद्देश्य ये माना जा सकता है कि इस प्रकार से मरणोपरान्त भी आत्मा के साथ अनुपापन और जुड़ाव कायम रखना और इंसान के शरीर के चले जाने के बाद भी उसकी आत्मा के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों को देखा जा सकता है।

आदिवासी क्षेत्रों में पूर्वजों की स्मृति और सामुदायिक परंपराओं का अपना विशिष्ट महत्व है। यहां संस्कृति को केवल त्योहारों या अनुष्ठानों तक के सीमित दायरे से भी परे, परिवार, समुदाय, भूमि, जंगल, खेती और खेती से जुड़ी समस्त प्रथाओं से अगर सम्पूर्ण प्रकृति के साथ संबंधों में भी दिखाई देती है। इस प्रकार से पितृपक्ष जैसे अवसर समुदाय को अपनी परंपराओं और सामाजिक संबंधों का बहुत बड़े सांस्कृतिक महत्व से जुड़ाव के रूप में पाया गया है। इस दौरान रिश्तेदारों का मिलना-जुलना, सामूहिक गतिविधियाँ और पारंपरिक प्रथाएं ग्रामीण जीवन को प्रभावित करती हैं। लेकिन कमजोर आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के लिए यही समय अतिरिक्त खर्च और काम के दबाव का कारण भी बन सकता है।

1.2 पितृपक्ष के दौरान आदिवासी क्षेत्र का जनजीवन – सीमा तट से जुड़े आदिवासी क्षेत्र के किसान परिवारों में



पितृपक्ष का समय केवल धार्मिक गतिविधियों तक सीमित नहीं होता। इस दौरान परिवार और समुदाय अपने-अपने सामाजिक एवं पारंपरिक दायित्वों में व्यस्त रहते हैं। कई परिवारों के लिए यह खेती-किसानी और आजीविका के महत्वपूर्ण समय के साथ भी जुड़ाता है।

02 पितृपक्ष के दौरान किसान परिवारों में प्रमुख सामाजिक एवं पारंपरिक दायित्व

2.1. पूर्वजों का स्मरण और श्रद्धा – परिवार अपने दिवंगत बुजुर्गों और पूर्वजों को याद करते हैं। उनकी स्मृति में स्थानीय परंपरा के अनुसार पूजा, अर्चना या अन्य रीति-रिवाज निभाए जाते हैं। भील समुदायों में पूर्वजों की स्मृति से जुड़े स्मारक और सामुदायिक परंपराएं भी महत्वपूर्ण रहते हैं।

2.2. परिवार और रिश्तेदारों का एकत्र होना – दूर रहने वाले रिश्तेदारों का घर आना-जाना, परिवार के साथ समय बिताना और सामूहिक रूप से परंपराएं निभाना इस अवधि को सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण बनाता है।

2.3. भोजन और सामूहिक भोज की व्यवस्था – परिवार अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूर्वजों की स्मृति में भोजन तैयार करते हैं और रिश्तेदारों/समुदाय के लोगों के साथ साझा करते हैं। कुछ भील परंपराओं में पूर्वजों को भोजन अर्पित करने की परंपरा कृषि और सामुदायिक जीवन से भी जुड़ी रही है।

2.4. कृषि और पूर्वजों के बीच संबंध – किसान परिवारों के लिए पूर्वज केवल परिवार की स्मृति नहीं, बल्कि भूमि, खेती और आने वाली पीढ़ियों से जुड़े सांस्कृतिक संदर्भ भी हैं। कुछ भील परंपराओं में कृषि चक्र, फसल और पूर्वज-स्मरण के बीच संबंध दिखाई देता है।

2.5. घर और सामाजिक दायित्वों की तैयारी – घर की साफ-सफाई, भोजन की व्यवस्था, रिश्तेदारों की मेजबानी और परंपरागत कार्यों में परिवार के सभी सदस्यों की भागीदारी निश्चित ही बढ़ जाती है।

2.6. सामुदायिक सहभागिता – स्थानीय स्तर पर परिवार एक-दूसरे के सामाजिक और धार्मिक कार्यों में सहयोग करते हैं। ऐसे अवसर सामुदायिक रिश्तों और पारस्परिक सहयोग को मजबूत करते हैं।

03 समुदाय, समाज और परिवार के बच्चों पर प्रभाव – इन दायित्वों में बच्चों की भागीदारी विशेष रूप से जुड़ी होती है क्योंकि बच्चों की परवरिश इसी माहौल में होती है और बचपन से ही वे इन सभी चीजों को देखते और करते हुए सीखते हैं, सही भी है क्योंकि आगे जाकर इन परम्पराओं को निभाने और बनाये रखने के लिए यह आवश्यक भी है ये चीजें अपने आप में गलत नहीं हैं। समस्या तब शुरू होती है जब पारिवारिक और आर्थिक जिम्मेदारियों का बोझ बच्चों की शिक्षा और बचपन पर पड़ने लगे। उदाहरण के लिए इसके इस पक्ष को इस प्रकार से देखा व समझा जा सकता है-

“पूर्वजों के सम्मान की तैयारी में बच्चे खेत से घर तक जिम्मेदारियां संभालते हैं-खेत का काम, पशुओं की देखभाल, घर की सफाई, मेहमानों की सेवा और छोटे भाई-बहनों की देखभाल। परिवार के लिए यह सहयोग है,

स्वस्थ थाली की शुरुआत खेत से – बच्चों के पोषण को केवल रसोई तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता। स्वस्थ और विविध थाली की शुरुआत खेत, बाड़ी और स्थानीय खाद्य प्रणाली से होती है। खेतों में अलग-अलग फसलों की विविधता, घरों में रसोई बाड़ी और स्थानीय बीजों तथा पारंपरिक फसलों का संरक्षण हमारी खाद्य विविधता को मजबूत कर सकता है।

इसलिए पोषण और खेती एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिस खेत और आसपास की प्रकृति में विविधता होगी, उसका झलक हमारी थाली में भी दिखाई देगी।

परिवार और समुदाय की भूमिका – बच्चों का स्वास्थ्य केवल परिवार की नहीं, बल्कि पूरे समुदाय की साझा चिंता है। परिवार, स्कूल, आंगनवाड़ी और समुदाय मिलकर बच्चों के लिए ऐसा वातावरण बना सकते हैं, जहाँ स्थानीय और मौसमी भोजन को महत्व मिले तथा पारंपरिक खाद्य ज्ञान अगली पीढ़ी तक पहुँचता रहे। घर में उपलब्ध मौसमी खाद्य पदार्थों को भोजन में शामिल करना, बच्चों को स्थानीय भोजन से परिचित कराना व परिवार के बुजुर्गों से पारंपरिक व्यंजनों तथा खाद्य परंपराओं के बारे में जानना – ये छोटे प्रयास बच्चों के भोजन और स्वास्थ्य के प्रति समझ को मजबूत कर सकते हैं।

थाली से स्वस्थ बचपन तक – भोजन हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा है। यह केवल भूख मिटाने का माध्यम नहीं, बल्कि हमारे स्वास्थ्य, खेती, प्रकृति और संस्कृति से जुड़ा हुआ है। बच्चों की थाली में स्थानीय और मौसमी खाद्य पदार्थों की विविधता को स्थान देना स्वस्थ बचपन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।

हर मौसम प्रकृति हमें कुछ नया देती है। जरूरत है कि हम उस विविधता को पहचानें, अपनी थाली में उसका स्थान बनाए रखें और बच्चों को भी उससे जोड़ें। स्थानीय भोजन और पारंपरिक ज्ञान को आगे बढ़ाते हुए हम ऐसे खाद्य संस्कृति को मजबूत कर सकते हैं, जिसमें स्वास्थ्य भी हो, स्वाद भी और अपनी मिट्टी से जुड़ाव भी। हर मौसम प्रकृति हमें कुछ नया देती है। जरूरत है कि हम उस विविधता को पहचानें, अपनी थाली में उसका स्थान बनाए रखें और बच्चों को भी उससे जोड़ें। स्थानीय भोजन और पारंपरिक ज्ञान को आगे बढ़ाते हुए हम ऐसे खाद्य संस्कृति को मजबूत कर सकते हैं, जिसमें स्वास्थ्य भी हो, स्वाद भी और अपनी मिट्टी से जुड़ाव भी।



लेकिन जब यही जिम्मेदारी बच्चे की पढ़ाई, आराम और स्कूल से अनुपस्थिति का कारण बन जाए, तो यह सवाल उठाना जरूरी है कि परंपरा निभाते-निभाते कहीं हम बच्चे का बचपन तो नहीं खो रहे?” दूसरी ओर, आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के सामने रोजमर्रा की जरूरतों के साथ अतिरिक्त सामाजिक खर्चों को पूरा करने की चुनौती रहती है। ऐसे परिवारों में महिलाओं और बच्चों की घरेलू तथा आर्थिक जिम्मेदारियां बढ़ सकती हैं। बच्चे खेतों में काम करने, पशुओं की देखभाल, घर के काम, छोटे भाई-बहनों की देखभाल या परिवार की आजीविका में सहयोग करने लगते हैं। कुछ परिवारों में बच्चों का काम करना सामान्य और आवश्यक समझ लिया जाता है। यही वह बिंदु है जहां परंपरा और आर्थिक मजबूरी के बीच बचपन धीरे-धीरे पीछे छूटने लगता है। आदिवासी बच्चों के जीवन पर पितृपक्ष के अन्य प्रभाव भी देखे जाने आवश्यक हैं क्योंकि क्षेत्र के समुदाय में अपनी परम्पराओं, जीवन चर्या, दैनिक जीवन की उहापोह और जोड़ तोड़ में हम बचपन के महत्व को भूल जाते हैं, पितृपक्ष स्वयं बच्चों के लिए समस्या नहीं है। समस्या तब पैदा होती है जब आर्थिक दबाव, सामाजिक जिम्मेदारियां और आजीविका की मजबूरियां बच्चों के अधिकारों पर भारी पड़ने लगती हैं।

3.1 बचपन और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव – बचपन में देखने, खेलने, सपने देखने और अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का समय है। जब बच्चा लगातार पारिवारिक जिम्मेदारियों में लगा रहता है, तो उसके खेल, आराम, मित्रता और सीखने के अवसर सीमित हो जाते हैं। और बाहरी दुनिया के साथ संपर्क करने के लिए उनका आत्मविकास बाधित हो जाता है।

3.2. पलायन और शिक्षा का संकट – यदि परिवार की आजीविका स्थानीय स्तर पर पूरी नहीं हो पाती, तो पितृपक्ष



के आसपास या उसके बाद होने वाला मौसमी पलायन भी बच्चों के जीवन को प्रभावित कर सकता है। परिवार के साथ जाने वाले बच्चे स्कूल से बाहर हो सकते हैं, जबकि पीछे छूटे बच्चों पर घरेलू जिम्मेदारियां बढ़ सकती हैं।

04. सवाल परंपरा का नहीं, प्राथमिकता का है – पितृरों को याद करना हमारी सांस्कृतिक विरासत है। अपनी परंपराओं और पूर्वजों का सम्मान करना जरूरी है। लेकिन क्या इस सम्मान की कीमत बच्चों की शिक्षा, सुरक्षा और बचपन से चुकाई जानी चाहिए?

जब किसी बच्चे के हाथ में किताब की जगह मजदूरी का औजार आ जाता है, जब स्कूल जाने के बजाय उसे खेत या घर की जिम्मेदारी संभालनी पड़ती है, तब हमें रुककर सोचने की जरूरत है।

पूर्वजों का सम्मान तभी सार्थक होगा, जब उनकी आने वाली पीढ़ी का भविष्य सुरक्षित हो। पितृपक्ष हमें अपने पूर्वजों को याद करने का अवसर देता है। इसी अवसर पर हमें यह भी संकल्प लेना चाहिए कि हमारे बच्चे अपना बचपन न बेचे-न मजबूरी में, न परंपरा के नाम पर। क्योंकि... “पितृरों की स्मृति तभी जीवित रहेगी, जब आने वाली पीढ़ी का बचपन जीवित रहेगा।”



आजीविका/मूल्य श्रृंखला : खरीफ से नकद, रबी के लिए पूँजी

जंगल से बाजार तक, खेत से पूँजी तक—वागड़ की आजीविका व्यवस्था को मजबूत करने की राह वागड़ की पहचान केवल पहाड़ियों, जंगलों और नदियों से नहीं, बल्कि यहाँ रहने वाले आदिवासी परिवारों की मेहनत, सामुदायिक जीवन और सीमित साधनों में जीवन चलाने की समझ से है। यहाँ परिवार किसी एक साधन पर निर्भर नहीं रहता खेत, जंगल, पशुधन व मजदूरी सब मिलकर परिवार को साल भर सहारा देते हैं। यह बहुआधारित व्यवस्था सदियों के अनुभव से बनी है, जहाँ प्रकृति को संसाधन नहीं, जीवन का साथी समझा गया है। इसलिए आजीविका मजबूत करने का रास्ता बाहर से कोई नया साधन लाने में नहीं, बल्कि पहले से मौजूद संसाधनों वन उपज, फसल, पशुधन, स्थानीय ज्ञान को बेहतर तरीके से आपस में जोड़ने में है।

●वागड़ की खेती केवल फसल नहीं, परिवार की सुरक्षा है

खेती का संबंध केवल अनाज से नहीं, भोजन, पशुधन, बीज, चारे, मिट्टी की उर्वरता और नकद आमदनी सबसे है। पारंपरिक हांगडी खेती में एक ही खेत में कई फसलें साथ उगाई जाती हैं, जिससे किसी एक फसल के खराब होने पर भी परिवार संकट में नहीं आता। बदलते मौसम के दौर में यह विविधता ही परिवार की सबसे बड़ी सुरक्षा है। इसीलिए आजीविका मजबूत करने की शुरुआत खेत से होनी चाहिए, जलसंरक्षण, मिट्टी की उर्वरता, स्थानीय बीज, हांगडी खेती व पशुधन को खेती से जोड़ना, ये सीधे परिवार का खर्च घटाते और आय को सुरक्षित करते हैं। मिट्टी को जीवित रखना, बीज बचाना और पानी रोकना — यही दीर्घकालीन आजीविका की पहली पूँजी है।

●बीज बचाना भी आजीविका बचाना है

वागड़ के परिवारों के पास स्थानीय मिट्टी—मौसम के अनुकूल बीजों का समृद्ध अनुभव है। बीज संरक्षण केवल परंपरा बचाना नहीं, किसान की आर्थिक स्वतंत्रता से भी जुड़ा है — हर साल बाहर से बीज न खरीदना पड़े और गाँव में बीजों का आदान—प्रदान हो, तो खेती की लागत नियंत्रित रहती है। इसलिए बीज स्वराज को आजीविका स्वराज का आधार मानना जरूरी है। गाँवों में बीजों की पहचान, संरक्षण, भंडारण और आदान—प्रदान की व्यवस्था मजबूत करना इसी दिशा का काम है — यह पूँजी पैसे से नहीं, पीढ़ियों के ज्ञान से बनी है।

●पानी बचेगा तो आजीविका टिकेगी

खेती, पशुधन, पेड़—पौधे और घर — हर जगह पानी जरूरी है, इसलिए जल स्वराज आजीविका स्वराज का महत्वपूर्ण आधार है। खेत में पानी रोकना, नमी बनाए रखना, वर्षा जल का उपयोग और भूजल पुनर्भरण का असर केवल पेयजल तक सीमित नहीं रहता — इससे फसल, चारा और पशुधन सभी को सहारा मिलता है। कहीं पानी बहकर निकलता है और कहीं रोकना जा सकता है, इसकी समझ गाँव के लोगों के पास पहले से हैय तकनीकी ज्ञान को इसी स्थानीय समझ से जोड़ना ज्यादा असरदार होगा। पानी में किया गया निवेश असल में आने वाली आजीविका में निवेश है।



●जंगल परिवार की प्राकृतिक पूँजी

जंगल से रिश्ता केवल वन—उपज तक सीमित नहीं—यह भोजन, चारा, औषधि, ईंधन और घरेलू जरूरतों का सहारा है, और इसका ज्ञान पीढ़ी—दर—पीढ़ी आया है। पर वन—उपज का आर्थिक लाभ पूरी क्षमता के अनुरूप परिवार तक नहीं पहुँचता, क्योंकि उत्पाद अक्सर कच्चे रूप में ही बेच दिया जाता है। यहाँ आजीविका की बड़ी संभावना छिपी है—यह समझना कि कौनसी वन उपज कब उपलब्ध होती है, उसका उपयोग क्या है, बाजार में मांग कितनी है, और उसे बेहतर मूल्य वाले उत्पाद में कैसे बदला जा सकता है।

●वन—उपज का मूल्य जंगल से बाजार तक तय होता है

महुआ, इमली, बेर, सीताफल, आंवला, गोंद, शहद जैसी वन—उपज के पीछे परिवार की मेहनत होती है — संग्रह, सफाई, सुखाना, भंडारण—फिर भी बाजार में अक्सर इस मेहनत की कीमत नहीं मिलती। यदि यही उपज गाँव में साफ, छोट्टी, सुखाई और सही पैक की जाए तो वह कच्ची वन—उपज से बाजार—योग्य उत्पाद बन जाती है। मूल्य संवर्धन का मतलब हमेशा बड़ी मशीन नहीं—सही समय पर संग्रह, सफाई और सही समय पर बिक्री भी मूल्य बेहतर कर देती है। जहाँ पर्याप्त मात्रा और बाजार संभावना हो, वहाँ छोटी प्रसंस्करण इकाइयाँ भी विकसित की जा सकती हैं, जिससे गाँव में रोजगार बढ़े और कीमत का बड़ा हिस्सा स्थानीय परिवारों के पास रहे।

●महिलाओं के श्रम और ज्ञान को आर्थिक शक्ति बनाना होगा

वन—उपज संग्रह से लेकर खेती व पशुधन तक, महिलाओं का योगदान हर जगह है, पर इन कामों का आर्थिक मूल्य परिवार की आय में अलग से दिखाई नहीं देता। जरूरत है महिलाओं को केवल लाभार्थी नहीं, उत्पादक, प्रसंस्करणकर्ता व उद्यमी के रूप में देखने की। यदि महिला समूह वन—उपज व कृषि उत्पादों की सफाई, प्रसंस्करण व पैकिंग से जुड़े, तो उनका पारंपरिक ज्ञान सीधे आय में बदल सकता है इसके लिए बाजार, लागत, मूल्य निर्धारण और हिस्साब—किताब की समझ भी जरूरी होगी, तभी उद्यम टिकाऊ बनेगा।

●युवा गाँव के संसाधनों को बाजार से जोड़ सकते हैं

रोजगार के लिए बाहर जाने की चुनौती के बीच युवा गाँव की अर्थव्यवस्था के नए वाहक भी बन सकते हैं। मोबाइल—डिजिटल माध्यमों की उनकी समझ को स्थानीय संसाधनों से जोड़ा जाए, तो वे गाँव और बाजार के बीच कड़ी बन सकते हैं — उत्पाद की जानकारी तैयार करना, बाजार भाव समझना, खरीदारों से जुड़ना और बिक्री के नए रास्ते खोजना। यह काम अकेले किसी एक युवा का नहीं, महिला समूहों और किसान संगठनों के साथ जुड़कर करने से इसकी ताकत बढ़ती है।

●किसान उत्पादक संगठन किसान को बाजार में अकेला नहीं रहने देता

छोटे किसान की समस्या केवल उत्पादन नहीं, बाजार भी है — कम मात्रा और तत्काल नकद जरूरत के कारण वह बेहतर भाव का इंतजार नहीं कर पाता। किसान उत्पादक संगठन (FPO) का असली काम किसान की उपज को बाजार से बेहतर तरीके से जोड़ना है। जब कई किसान उपज एक

जगह लाते हैं, तो मात्रा बढ़ती है, सामूहिक भंडारण—परिवहन संभव होता है और बड़े खरीदार से बातचीत की स्थिति मजबूत होती है। वागड़ में इसे खरीफ, रबी, फल और वन—उपज सहित बहु—उत्पाद मूल्य श्रृंखला से जोड़ा जा सकता है — पर यह तभी मजबूत होगा जब किसान को पारदर्शी हिस्सा, सही तौल और समय पर भुगतान के जरिए लाभ साफ दिखे।

●गाँव में ही मूल्य बढ़े, तभी गाँव में पैसा टिकेगा

उत्पाद का सबसे बड़ा लाभ तभी मिलता है जब उत्पादक मूल्य श्रृंखला के कुछ हिस्से पर भी नियंत्रण रखे। वन—उपज सीधे व्यापारी तक चली जाए तो मूल्य बढ़ाने का अवसर गाँव से बाहर चला जाता है। वही गाँव में साफ, सुखाई, पैक और सामूहिक रूप से बाजार में जाए तो मूल्य का हिस्सा गाँव में ही रुकता है। यही सिद्धांत खेत की उपज पर भी लागू होता है — इसलिए आजीविका का लक्ष्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं, उत्पादन से मूल्य संवर्धन और मूल्य संवर्धन से बाजार तक पूरी श्रृंखला मजबूत करना होगा चाहिए।

●स्थानीय उद्यम छोटी जरूरत से शुरू होते हैं

●गाँव में उद्यम का मतलब हमेशा बड़ी फैक्ट्री नहीं—एक छोटा संग्रहण केंद्र, सफाई — छंटाई की सुविधा, पैकिंग या बीज—प्रसंस्करण जैसा छोटा काम भी उद्यम है। उद्यम वहीं सफल होता है जहाँ उसकी जड़ स्थानीय जरूरत में हो—जहाँ उत्पाद पर्याप्त मात्रा में है पर बाजार तक पहुँचाने की व्यवस्था नहीं, या जहाँ महिलाओं के पास पारंपरिक ज्ञान और बाजार में मांग दोनों हैं। इसलिए पहले बाजार और स्थानीय संसाधन को समझना, फिर उद्यम शुरू करना जरूरी है।



●खरीफ की कमाई को रबी की पूँजी बनाना होगा

खरीफ का मौसम केवल उत्पादन का नहीं, नकद आमदनी का भी समय है। पूरी राशि तत्काल खर्च हो जाए तो रबी शुरू होते समय किसान के पास पूँजी नहीं बचती और उसे उधार लेना पड़ता है। इसलिए खरीफ की कमाई में से एक हिस्सा रबी के लिए पहले ही अलग रखना — यह कोई बड़ी व्यवस्था नहीं, बल्कि परिवार की अपनी आर्थिक समझ है। इससे किसान की अपनी पूँजी बढ़ेगी, बाहरी कर्ज पर निर्भरता घटेगी, और खरीफ—रबी एक—दूसरे से जुड़कर आर्थिक व्यवस्था को निरंतर चक्र का रूप देती।

●पशुधन, खेती और नकद अर्थव्यवस्था

गाय, बैल, बकरी, मुर्गी—पशुधन परिवार को कई तरह सहारा देता है। गोबर खेत के लिए, पशु घरेलू जरूरतों के लिए जरूरत पड़ने पर नकद आमदनी का स्रोत। इसलिए पशुधन को खेती से अलग नहीं, उसकी आर्थिक व्यवस्था का हिस्सा मानना चाहिए। चारा संसाधनों का बेहतर उपयोग और पशु स्वास्थ्य—प्रबंधन मजबूत करने से परिवार की संपत्ति मजबूत होती है—जल, बीज, खेती व पशुधन स्वराज को अलग कार्यक्रमों की तरह नहीं, एक ही आर्थिक व्यवस्था के हिस्सों की तरह देखना जरूरी है।

●समुदाय की पुरानी ताकत को नई अर्थव्यवस्था से जोड़ना होगा

श्रम का आदान—प्रदान, बीज का लेन—देन, कठिन समय में एक—

दूसरे के साथ खड़ा होना—वागड़ के समाज की यह सामूहिकता एक पुरानी ताकत है। आज इसी सामुदायिकता को बाजार से जोड़ने की जरूरत है—जहाँ एक किसान की मात्रा कम है, वहाँ सामूहिक संग्रह जहाँ एक महिला के लिए बाजार तक पहुँचना मुश्किल है, वहाँ महिला समूह की सामूहिक पहुँच काम आ सकती है।

●आजीविका की कार्ययोजना परिवार से शुरू होकर बाजार तक जाएगी

पहले परिवार व गाँव की वास्तविक स्थिति समझते हुए कौनसी फसलें बीज, वन—उपज उपलब्ध हैं, महिलाओं—युवाओं की क्या भूमिका है, नकद जरूरत कब सबसे अधिक होती है। फिर उन्हीं उत्पादों की पहचान हो जिनकी उपलब्धता, गुणवत्ता व बाजार—संभावना पर्याप्त हो व मूल्य श्रृंखला को समझा जाए—उत्पाद कहीं से आता है, किसके हाथ से गुजरता है, कीमत कहीं बढ़ती है। इसके बाद गाँव में जहाँ संभव हो, सफाई—छंटाई से शुरू कर धीरे—धीरे प्रसंस्करण—पैकेजिंग तक बढ़ा जा सकता है, जिसमें महिलाओं—युवाओं को सक्रिय जिम्मेदारी दी जाए व **FPO** सामूहिक बाजार की भूमिका निभाए। इस पूरी प्रक्रिया में जल, मिट्टी, बीज व पशुधन स्वराज को आधार बनाना जरूरी है, क्योंकि आजीविका केवल बाजार से नहीं टिकेगी।

●सफलता का माप केवल उपज नहीं

सफलता को केवल उत्पादन या बिक्री की मात्रा से नहीं मापा जाना चाहिए—किसान की लागत कितनी घटी, उसकी अपनी पूँजी कितनी बढ़ी, महिलाओं—युवाओं को कितना योगदान/काम मिला, बाहरी कर्ज पर निर्भरता कितनी घटी, कितने परिवारों तक स्थानीय बीज पहुँचे और कितनी वन—उपज मूल्यवर्धित उत्पाद बनकर बाजार तक पहुँची—इन व्यापक पैमानों पर देखने से ही बदलाव की असली तस्वीर सामने आएगी।

●आर्थिक स्वराज की ओर वागड़ की अपनी राह

सफलता का माप केवल उपज नहीं सफलता को केवल उत्पादन या बिक्री की मात्रा से नहीं मापा जाना चाहिए — किसान की लागत कितनी घटी, उसकी अपनी पूँजी कितनी बढ़ी, महिलाओं—युवाओं को कितना योगदान/काम मिला, बाहरी कर्ज पर निर्भरता कितनी घटी, कितने परिवारों तक स्थानीय बीज पहुँचे और कितनी वन—उपज मूल्यवर्धित उत्पाद बनकर बाजार तक पहुँची। इन व्यापक पैमानों पर देखने से ही बदलाव की असली तस्वीर सामने आएगी।

●आर्थिक स्वराज की ओर वागड़ की अपनी राह

वागड़ की आजीविका मजबूत करने की सबसे बड़ी संभावना उसके अपने संसाधनों में है। मिट्टी, पानी, बीज, वन—उपज, पशुधन, महिलाओं का ज्ञान, युवाओं की क्षमता और समुदाय की सामूहिकता। जरूरत इन्हें अलग—अलग देखने के बजाय आपस में जोड़ने की है : जल स्वराज खेती को आधार देगा, बीज स्वराज स्वतंत्रता मजबूत करेगा, जंगल नए अवसर देगा, पशुधन चलती—फिरती पूँजी बनेगा, FPO सामूहिक बाजार—शक्ति देगा और खरीफ की कमाई रबी की पूँजी बनेगी। असली बदलाव तब होगा जब गाँव अपने संसाधनों की पहचान खुद करे, उनकी गुणवत्ता बढ़ाए और सामूहिक ताकत से बाजार तक पहुँचे—तब जंगल प्राकृतिक पूँजी नकद, खेत खाद्य—आर्थिक सुरक्षा का आधार, पशुधन खेती और नकद अर्थव्यवस्था के बीच पुल, महिला ज्ञान—उद्यम की मालिक, युवा स्थानीय उद्यमी, और किसान बाजार में भागीदार। वागड़ की आजीविका का मफिय किसी एक फसल या योजना में नहीं, विविधता, सामूहिकता और अपनी पूँजी बनाने की क्षमता में है।

ऊर्जा/स्वच्छ रसोई : धुआँ रहित भोर चूल्हे से खेत तक स्वच्छ ऊर्जा से मजबूत होती आजीविका



खेत में हम देखते हैं कि कम संसाधनों में बेहतर उत्पादन कैसे लें — अपना बीज खेत की खाद और पानी का सही उपयोग लागत घटाता है और संसाधनों पर भरोसा बढ़ाता है। यही सोच घर की ऊर्जा पर भी लागू होती है, क्योंकि खाना पकाने, पानी गर्म करने, रोशनी और खेती के कामों के लिए चाहिए ऊर्जा भी परिवार और आजीविका का ही हिस्सा है। रसोई की ऊर्जा को हम अक्सर केवल खाना पकाने की जरूरत मान लेते हैं, पर इसके पीछे ईंधन जुटाने का समय, श्रम और लगातार होने वाला खर्च भी जुड़ा है। पारंपरिक चूल्हे का धुआँ घर के वातावरण को भी प्रभावित करता है। इसलिए स्वच्छ रसोई की बात केवल चूल्हा बदलने तक सीमित नहीं—यह देखना जरूरी है कि ऊर्जा व्यवस्था समय, श्रम और स्थानीय संसाधनों का बेहतर उपयोग कैसे करे।

यहीं से बायोगैस, सौर ऊर्जा और विकेन्द्रीकृत नवीकरणीय ऊर्जा (DRE) जैसे विकल्प महत्वपूर्ण हो जाते हैं — ये केवल तकनीकें नहीं, ऊर्जा को खेती,आजीविका से जोड़ने के रास्ते हैं। किसी परिवार के लिए बायोगैस, किसी के लिए सौर ऊर्जा, तो किसी गाँव के लिए सामुदायिक ऊर्जा व्यवस्था बेहतर हो सकती है। ऊर्जा को केवल खर्च नहीं, समय बचाने का जरिया भी देखा जाना चाहिए —बचा समय खेत, पशुपालन या बाड़ी में लगाया जा सकता है, और इस तरह रसोई का बदलाव धीरे—धीरे पूरी आजीविका व्यवस्था को प्रभावित करता है।

रसोई की ऊर्जा, घर की पूरी व्यवस्था से जुड़ी है—

खाना पकाना, पानी गर्म करना, रोशनी, मोबाइल चार्जिंग या सिंचाई प्रसंस्करण—हर काम में ऊर्जा चाहिए। इसलिए ऊर्जा पर बात करना केवल रसोई या बिजली की बात नहीं, परिवार के श्रम और स्थानीय

अर्थव्यवस्था की भी बात है। ग्रामीण परिवारों के लिए यह सवाल अहम है कि ऊर्जा के लिए हम कितने बाहरी संसाधनों पर निर्भर हैं। ऊर्जा व्यवस्था स्थानीय जरूरतों और संसाधनों से जुड़ी हो, तो खर्च घटने के साथ आत्मनिर्भरता की दिशा में भी कदम बढ़ता है।

गोबर से गैस, गैस से रसोई और फिर खेत तक — पशुधन और खेती हमारे जीवन में जुड़े हैं — गोबर लंबे समय से खाद का स्रोत रहा है, और अब इसी से बायोगैस भी बनती है, जिससे खाना पकाया जाता है। बायोगैस का लाभ रसोई तक नहीं रुकता—संयंत्र से निकलने वाली स्लरी खेत में जैविक खाद बनती है। इस तरह गोबर ऊर्जा में बदलकर रसोई में काम आता है और फिर खाद बनकर खेत लौट आता है। पर बायोगैस लगाने का फैसला अपनी परिस्थिति देखकर ही लेना जरूरी है — पर्याप्त गोबर, पानी, जगह और नियमित देखभाल इसके लिए जरूरी हैं। सही परिस्थिति में लगाया और नियमित चलाया गया संयंत्र लंबे समय तक उपयोगी रहता है।

सूरज की ऊर्जा, घर से खेती तक — बायोगैस का आधार पशुधन है, तो सौर ऊर्जा का आधार सूरज। आज इसका उपयोग सिर्फ बल्ब जलाने तक सीमित नहीं—रोशनी, मोबाइल चार्जिंग, छोटे उपकरण और खेती — आजीविका तक फैला है। इसकी खासियत है कि व्यवस्था जरूरत अनुसार छोटी या बड़ी हो सकती है—किसी परिवार के लिए छोटा सिस्टम काफी है, तो स्कूल या स्वास्थ्य केंद्र के लिए बड़ी क्षमता चाहिए। इसलिए सिर्फ उपकरण खरीदने से पहले असली जरूरत समझनी जरूरी है।

इसी सोच से (DRE) (विकेन्द्रीकृत नवीकरणीय ऊर्जा) की भूमिका सामने आती है — बड़े दूर स्रोतों पर निर्भर रहने के बजाय जरूरत अनुसार स्थानीय स्तर पर ही ऊर्जा व्यवस्था विकसित करना। गाँव में ऊर्जा की जरूरत केवल घरों तक नहीं — पानी, खेती, प्रसंस्करण और छोटे व्यवसायों तक भी है, जहाँ स्थानीय नवीकरणीय ऊर्जा अहम भूमिका निभा सकती है।

जब ऊर्जा की व्यवस्था बदलेगी, तो समय का उपयोग भी बदलेगा — ग्रामीण परिवार के लिए समय एक अहम संसाधन है।

पारिस्थितिकी वृक्ष : अड़सा (वासा) - औषधीय गुण व उपयोग

आज हमारे क्षेत्र में H1B1 वायरस के प्रकोप से समुदाय सर्दी, खासी, बुखार से पीड़ित है इस समय हमें लगा की वाते पत्रिका के पाठको को अड़सा औषधीय पौधे की जानकारी साझा करनी चाहिए, जो शायद इस समय समुदाय के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। तो इस अंक में हाज़िर है अड़सा पौधा औषधीय गुणों के साथ —

आयुर्वेद में अड़सा को सामान्यतः : वासा या वासाका के नाम से जाना जाता है। यह एक अत्यंत उपयोगी और लोकप्रिय औषधीय पौधा है, जिसका उपयोग प्राचीन काल से श्वसन रोगों, ज्वर, त्वचा संबंधी समस्याओं तथा सूजन से संबंधित रोगों में किया जाता रहा है। अड़सा की पहचान इसकी विशिष्ट गंध और कड़वे स्वाद से होती है। इस पौधे के विभिन्न भाग—पत्तियाँ, फूल, जड़, बीज, गोंद और दूधिया रस (दूधी)—औषधीय गुणों से युक्त माने जाते हैं। इसी कारण आयुर्वेद में अड़सा को एक बहुउपयोगी औषधीय पौधा माना गया है।

अड़सा के प्रकार—आयुर्वेद में अड़सा के दो प्रमुख भेद बताए गए हैं —

●**श्वेत अड़सा**—यह सामान्य रूप से उपलब्ध होता है और अधिकतर औषधीय उपयोग में लिया जाता है।

●**कृष्ण अड़सा**—इसकी उपलब्धता बहुत कम होती है और इसे दुर्लभ माना जाता है।

●**श्वसन रोगों में अड़सा के लाभ**—अड़सा विशेष रूप से अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, काली खाँसी तथा अन्य श्वसन संबंधी समस्याओं में उपयोगी माना जाता है। इसके पत्तों या पत्तियों के चूर्ण का उपयोग पारंपरिक रूप से शहद के साथ किया जाता है,



जिससे कफ को बाहर निकालने में सहायता मिल सकती है। अड़सा में पाए जाने वाले सक्रिय तत्व श्वसन तंत्र पर प्रभाव डालते हैं और बलगम को बाहर निकालने की प्रक्रिया में सहायता करते हैं। इसी कारण आयुर्वेदिक चिकित्सा में इसे स्वास व कास (खाँसी) से संबंधित समस्याओं में महत्वपूर्ण औषधीय पौधा माना गया है। अड़सा की पत्तियों से तैयार काढ़े का भी पारंपरिक रूप से उपयोग किया जाता है।

●**गठिया, जोड़ों के दर्द और सूजन में उपयोग** — अड़सा में पाए जाने वाले एंटी—इंफ्लेमेटरी व एंटीऑक्सीडेंट गुण इसे शरीर में होने वाली सूजन तथा दर्द से संबंधित समस्याओं में उपयोगी बनाते हैं। पारंपरिक चिकित्सा में इसका उपयोग जोड़ों के दर्द, सूजन और अकड़न को कम करने के लिए किया जाता रहा है। इसके कुछ घटकों में एंटीस्पार्स्मोडिक प्रभाव भी बताए गए हैं, जो मांसपेशियों की ऐंठन और असहजता को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

●**त्वचा रोगों में अड़सा का प्रयोग** — अड़सा का उपयोग पारंपरिक रूप से त्वचा संबंधी समस्याओं में भी किया जाता है। ताजे पत्तों का पेस्ट प्रभावित स्थान पर लगाने से फोड़े—फुंसी, घाव, दर्द व सूजन में राहत मिलने की मान्यता है। इसके पत्तों में पाए जाने वाले कुछ प्राकृतिक यौगिकों के कारण इसमें जीवाणुरोधी गतिविधि भी पाई गई है।

●**बुखार में लाभ** — आयुर्वेद में अड़सा की पत्तियों या जड़ से तैयार औषधीय काढ़े का उपयोग ज्वर की स्थिति में भी बताया

गया है। इसके ज्वरनाशक गुणों के कारण पारंपरिक चिकित्सा में इसका प्रयोग शरीर के तापमान और ज्वर से जुड़ी कुछ समस्याओं में किया जाता रहा है। इस प्रकार अड़सा एक बहुउपयोगी औषधीय पौधा है, जिसका विशेष महत्व श्वसन स्वास्थ्य, सूजन, दर्द, त्वचा संबंधी समस्याओं और ज्वर से जुड़ी पारंपरिक चिकित्सा में है।

●अड़सा के प्रमुख लाभ और मानव जीवन में महत्व

●**स्वास्थ्य समस्या अड़सा के लाभ उपयोग का तरीका** खांसी और जुकाम सूखी या बलगम वाली खांसी, गले की खराश और कण्डन को तुरंत ठीक करता है। इसके पत्तों के 5—10 मिली रस में एक चम्मच शहद मिलाकर दिन में दो बार लें। दमा और ब्रोंकाइटिस फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ाता है और अस्थमा के दौरों को नियंत्रित करता है। अड़सा के पत्तों, तुलसी और अदरक का काढ़ा बनाकर पिएं।

●**जोड़ों का दर्द और गठिया** — जोड़ों के दर्द, सूजन और यूरिक एसिड के स्तर को कम करता है। अड़सा के पत्तों को पीसकर गुनगुना करके प्रभावित जोड़ पर लेप लगाएं।

●**त्वचा रोग व घाव** — फोड़े, फुंसी, खुजली और घावों को तेजी से ठीक करता है। इसकी पत्तियों का पेस्ट बनाकर घाव या त्वचा संक्रमण पर लगाएं।

●**रक्तस्त्राव** — बवासीर, नाक से खून आना (नकसीर) या अत्यधिक मासिक धर्म के रक्तस्त्राव को रोकता है। अड़सा के पत्तों या फूलों का रस मिश्री के साथ सेवन करें।



●**पाचन और तीवर स्वास्थ्य** — यह गैस, एसिडिटी और कब्ज दूर करता है और तीवर को डिटॉक्स करता है। इसके पत्तों का हल्का काढ़ा चिकित्सक की सलाह अनुसार लें।

●ध्यान रखने योग्य बातें—

अड़सा वैसे तो सुरक्षित है, लेकिन इसके उपयोग में कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए —

1. **गर्भावस्था** — गर्भवती महिलाओं को अड़सा का सेवन बिल्कुल नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसके सक्रिय तत्व गर्भाशय को संकुचित कर सकते हैं।

2. **मात्रा का ध्यान** — अत्यधिक मात्रा में सेवन करने से मतली, उल्टी या पेट खराब होने की समस्या हो सकती है।

3. **बच्चों के लिए** — छोटे बच्चों को इसका सेवन केवल किसी आयुर्वेदिक चिकित्सक की देखरेख में ही कराएं।

●अड़सा (वासा) — औषधीय गुण एवं उपयोग

आयुर्वेद में अड़सा को सामान्यतः : वासा या वासाका के नाम से जाना जाता है। यह एक अत्यंत उपयोगी और लोकप्रिय औषधीय पौधा है, जिसका उपयोग प्राचीन काल से श्वसन रोगों, ज्वर, त्वचा संबंधी समस्याओं तथा सूजन से संबंधित रोगों में किया जाता रहा है। अड़सा की पहचान इसकी विशिष्ट गंध और कड़वे स्वाद से होती है।

इस प्रकार अड़सा एक बहुउपयोगी औषधीय पौधा है, जिसका विशेष महत्व श्वसन स्वास्थ्य, सूजन, दर्द, त्वचा संबंधी समस्याओं और ज्वर से जुड़ी पारंपरिक चिकित्सा में है।



सफलता की कहानी : मेहनत, परिवार और खेती से आत्मनिर्भरता की ओर विरसिंगभाई पारगी व नीलमबेन पारगी की प्रेरक कहानी

विरसिंगभाई और नीलमबेन पारगी की कहानी “नौकरी से खेती और दूरी से परिवार की ओर लौटने” की कहानी है। यह कहानी बताती है कि यदि परिवार अपनी मेहनत, जमीन और उपलब्ध संसाधनों को सही दिशा में उपयोग करे, तो खेती भी एक सम्मानजनक और टिकाऊ आजीविका का मजबूत विकल्प बन सकती है। सक्षम समूह से जुड़ाव, नियमित बैठकों से मिली प्रेरणा, पति-पत्नी की साझेदारी और बाजार आधारित सब्जी उत्पादन ने पारगी परिवार के जीवन में नई दिशा दी है। आज उनके लिए सफलता का अर्थ केवल अधिक कमाई नहीं, बल्कि परिवार के साथ रहना, बच्चों का बेहतर भविष्य बनाना और अपने गांव में रहकर आत्मनिर्भर जीवन जीना है।

परिचय – दाहोद जिले के फतेपुरा तालुका के ग्राम माधवा निवासी विरसिंगभाई पारगी एवं नीलमबेन पारगी आज अपने गांव में रहकर खेती और सब्जी उत्पादन के माध्यम से न केवल परिवार की आजीविका चला रहे हैं, बल्कि आत्मनिर्भरता की एक नई मिसाल भी पेश कर रहे हैं। कभी बेहतर आय की तलाश में दोनों पति-पत्नी को अपने परिवार से दूर रहकर अलग-अलग शहरों में नौकरी करनी पड़ती थी। आज वहीं दंपति अपने बच्चों और माता-पिता के साथ रहते हुए खेती को अपना व्यवसाय बनाकर आगे बढ़ रहे हैं।

परिवार और आर्थिक स्थिति

– विरसिंगभाई पारगी शिक्षित युवा हैं और उन्होंने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की है। उनकी पत्नी नीलमबेन ने जी.एन.एम. का कोर्स किया हुआ है। परिवार में पति-पत्नी के साथ दो बच्चे तथा माता-पिता भी रहते हैं। परिवार के पास लगभग 2 बीघा जमीन है, जो उनकी आजीविका का महत्वपूर्ण आधार है। विरसिंगभाई पहले गुजरात के उंडा में एक माइक्रो फाइनैस कंपनी में नौकरी करते थे। उनका कार्यस्थल गांव से लगभग 260 किलोमीटर दूर था और उन्हें लगभग ₹. 14,500 प्रतिमाह वेतन मिलता था। दूसरी ओर, नीलमबेन अपने गांव से लगभग 50 किलोमीटर दूर दाहोद के झाइडस अस्पताल में कार्यरत थीं, जहां उन्हें लगभग ₹. 10,000 प्रतिमाह वेतन मिलता था।

दोनों की नौकरी अलग-अलग स्थानों पर होने के कारण उनका अधिकांश समय परिवार से दूर गुजरता था। महीने में केवल एक बार

ही दोनों की मुलाकात हो पाती थी। बच्चों की देखभाल, माता-पिता की जिम्मेदारी और परिवार से दूर रहने की परिस्थितियां धीरे-धीरे उनके लिए कठिन होती गईं।

नौकरी छोड़कर खेती की ओर कदम – लगातार दूरी और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच विरसिंगभाई और नीलमबेन ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया। दोनों ने अपनी नौकरियां छोड़कर अपने गांव में रहकर आजीविका का नया रास्ता तलाशने का निर्णय लिया।

इसी दौरान नीलमबेन सक्षम समूह से जुड़ीं। वे नियमित रूप से समूह की मासिक बैठकों में भाग लेने लगीं। बैठकों में होने वाली चर्चा, अनुभवों का आदान-प्रदान और खेती एवं आजीविका से संबंधित जानकारी ने उन्हें प्रेरित किया कि उपलब्ध जमीन का बेहतर उपयोग करके परिवार की आय बढ़ाई जा सकती है। **इसी प्रेरणा से उन्होंने अपनी एक बीघा जमीन में सब्जी की खेती शुरू की।**

मेहनत की दिशा – शुरुआत में सब्जी की खेती उनके लिए एक नया अनुभव था, लेकिन दोनों पति-पत्नी ने इसे पूरी मेहनत और लगन से अपनाया। विरसिंगभाई खेत में रहकर सब्जियों की निराई-गुड़ाई, सिंचाई, देखभाल और अन्य कृषि कार्य करते हैं। दूसरी ओर, नीलमबेन सब्जियों को बाजार तक ले जाकर बेचने की जिम्मेदारी संभालती हैं।

दोनों ने अपने काम का ऐसा तालमेल बनाया है कि खेती और बाजार-दोनों की जिम्मेदारी व्यवस्थित रूप से पूरी हो सके। विरसिंगभाई प्रतिदिन सुबह अपनी बाइक पर खेत से सब्जियां लेकर नीलमबेन को फतेपुरा, जो उनके गांव से लगभग 7 किलोमीटर दूर है, वहां छोड़ते हैं। इसके बाद नीलमबेन दिनभर सब्जियों की बिक्री करती हैं और विरसिंगभाई वापस खेत में जाकर खेती का काम संभालते हैं। शाम को विरसिंगभाई पुनः फतेपुरा जाकर नीलमबेन को घर लेकर आते हैं। यह रोजमर्रा की दिनचर्या उनके लिए केवल काम नहीं, बल्कि साझेदारी और आत्मनिर्भरता का माध्यम बन गई है।

सब्जी बिक्री से नियमित आय – नीलम बेन प्रतिदिन लगभग ₹. 1,200 से ₹.1,500 तक की सब्जियों का व्यापार करती हैं। इस प्रकार

सफलता की कहानी-महिला/स्वावलंबन : मिट्टी बनी रोजगार की राह....

उम्र तो बस एक आकड़़ा है...यह कहानी 45 वर्षीय नाथी बेन की है, जिन्होंने उम्र को कमी अपनी राह की बाधा नहीं बनने दिया।

पलायन की जिंदगी से निकलकर उन्होंने पारंपरिक खेती, पशुपालन, जल संरक्षण, बीज संरक्षण, पारंपरिक कृषि और ग्रामीण उद्यमिता को अपनाया। आज नाथी बेन केवल अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत नहीं कर रही हैं, बल्कि बिलुड़ा गांव से लेकर पूरे साबला खंड और डुंगरपुर जिले तक एक सफल और सक्रिय किसान के रूप में अपनी पहचान बना चुकी हैं। ग्रामीण जीवन में खेती केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि परिवार, परंपरा और आत्मनिर्भरता का आधार रही है। लेकिन बदलते समय के साथ खेती जब बाजार और बाहरी संसाधनों पर अधिक निर्भर होने लगी, तो छोटे किसानों के लिए खेती से पर्याप्त आमदनी प्राप्त करना चुनौती बन गया। ऐसे में रोजगार की तलाश में गांव से शहरों की ओर पलायन एक मजबूरी बनता गया।

राजस्थान के बिलुड़ा गांव की नाथी बेन और उनके पति रमेश जी, उम्र 56 वर्ष, भी इसी परिस्थिति से गुजर रहे थे। वर्ष 2020 से पहले परिवार के लिए रमेशजी रोजगार की तलाश में मुंबई पलायन करते दो गांव में 7 बीघा जमीन होने के बावजूद खेती से इतनी आमदनी नहीं हो पा रही थी कि परिवार की जरूरतें आसानी से पूरी हो सके। लेकिन वर्ष 2021 में गांव में जब पारंपरिक खेती और स्वावलंबन की बात शुरू हुई और सक्षम समूह का गठन हुआ, तब नाथी बेन के जीवन में बदलाव की एक नई शुरुआत हुई।

सक्षम समूह से जुड़ाव और सोच में बदलाव – नाथी बेन सक्षम समूह से जुड़ीं। समूह के माध्यम से उन्हें पारंपरिक खेती, देसी बीज, पशुपालन, मिट्टी, पानी और स्थानीय संसाधनों के महत्व को समझने का अवसर मिला। जब नाथी बेन ने खेती को स्वयं करना शुरू किया, तो उन्हें बाजार आधारित खेती और पारंपरिक खेती के बीच का अंतर और अधिक गहराई से समझ आया। उन्होंने महसूस किया कि किसान यदि अपने खेत, पशुधन, देसी बीज और स्थानीय संसाधनों का सही उपयोग करे, तो खेती केवल खर्च करने का माध्यम नहीं, बल्कि परिवार की आय और आत्मनिर्भरता का मजबूत आधार बन सकती है।

नाथी बेन के मन में एक सवाल उठा – जब अपनी जमीन गांव में है, पशुधन है और खेती की संभावनाएं हैं, तो रोजगार के लिए बार-बार मुंबई क्यों जाना?यहीं से परिवार की सोच बदली। नाथी बेन ने खेती में संभावनाएं देखीं और अपने पति रमेश जी को भी वापस गांव बुलाने का निर्णय लिया। रमेश जी ने भी पत्नी के निर्णय में उनका साथ दिया। दोनों ने मिलकर खेती को नए तरीके से आगे बढ़ाने का संकल्प लिया।

खेती के साथ पशुपालन को बनाया आय का आधार – नाथी बेन ने समझ लिया था कि किसान की आय केवल खेत से नहीं, बल्कि खेती और पशुपालन के आपसी संबंध से भी बढ़ाई जा सकती है। वर्ष 2024 में परिवार ने पशुओं की संख्या 15 से बढ़ाकर 25 कर दी। पशुपालन बढ़ने से परिवार के लिए



नहीं था। नाथी बेन ने इसे खेती की ताकत में बदलाव शुरू किया।

वर्मीकम्पोस्ट को बनाया कमाई का साधन – वर्ष 2024 में नाथी बेन ने वर्मी कम्पोस्ट यूनिट भी स्थापित की। खेत और पशुपालन से निकलने वाले पारंपरिक संसाधनों का उपयोग कर उन्होंने खाद और केंचुआ उत्पादन शुरू किया। धीरे-धीरे वर्मी कम्पोस्ट उनके लिए केवल खेती में उपयोग होने वाली खाद नहीं रही, बल्कि आय का एक नया स्रोत बन गई।वे वर्मी कम्पोस्ट और केंचुओं की बिक्री से लगभग ₹.15,000 – ₹.17,000 सालाना अतिरिक्त आय अर्जित करने लगीं। इस पहल ने उनके परिवार की आर्थिक व्यवस्था को और मजबूत किया। खेत से फसल, पशुओं से दूध, बकरी पालन से आय और वर्मी कम्पोस्ट से कमाई – इन सभी ने मिलकर परिवार के लिए बहुआयामी आय का आधार तैयार किया।

बीज बचाए, परंपरा को आगे बढ़ाया – पारंपरिक खेती को समझने के साथ नाथी बेन ने बीज संरक्षण की महत्ता को भी गहराई से समझा।आज उनके पास पारंपरिक बीजों की 29 किस्में संरक्षित हैं। नाथी बेन इन बीजों को केवल अपने खेत तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि गांव के अन्य लोगों और किसानों तक भी पहुंचाती हैं। इससे गांव में स्थानीय बीजों की उपलब्धता बढ़ी और किसानों की बाजार से बीज खरीदने की निर्भरता कम करने में मदद मिली।नाथी बेन के लिए ये 29 बीज केवल अलग-अलग फसलों की किस्में नहीं हैं। ये उनके लिए परंपरा, पोषण, जैव विविधता और किसान आत्मनिर्भरता की विरासत हैं।

पानी की कीमत समझी, खेती का दायरा बढ़ाया – खेती को आगे बढ़ाने में पानी सबसे महत्वपूर्ण जरूरत थी। नाथी बेन ने पानी की कीमत को समझा और उपलब्ध सरकारी योजनाओं का लाभ लेने की दिशा में कदम बढ़ाया। सरकारी योजना के तहत परिवार ने सबसे पहले पीएम-कूसुम योजना के माध्यम से सोलर लगवाया। सोलर की सुविधा मिलने से सिंचाई की व्यवस्था बेहतर हुई और खेती का दायरा बढ़ाने का अवसर मिला।आब परिवार केवल एक मौसम की फसल पर निर्भर नहीं रहा। उन्होंने रबी और जायद की अतिरिक्त फसलें लेना शुरू किया। जायद में मूंग की फसल ने परिवार की आय में एक और महत्वपूर्ण योगदान दिया। मूंग की खेती से उन्हें लगभग ₹.14,000 की अतिरिक्त आय प्राप्त हुई।नाथी बेन ने महसूस किया कि यदि पानी की उपलब्धता, फसल विविधता और सही तकनीक का उपयोग किया जाए, तो एक ही जमीन से वर्ष में अलग-अलग समय पर आय प्राप्त की जा सकती है।

रमेश जी की सक्रियता ने बढ़ाया आत्मविश्वास – नाथी बेन की सक्रियता और खेती में हो रहे बदलावों को देखते हुए उनके पति रमेश जी भी लगातार आगे आने लगे।वर्ष 2024 में ग्राम स्वराज समूह ने रमेश जी को कृषि एवं आदिवासी स्वराज संगठन के सदस्य के रूप में आगे बढ़ाया। इस

सब्जी की खेती ने उनके परिवार के लिए नियमित नकद आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत तैयार किया है। वे मुख्य रूप से सोमवार से शुक्रवार तक सब्जियों का व्यापार करती हैं। शनिवार को फतेपुरा में हाट लगने के कारण सब्जियों का उचित भाव नहीं मिल पाता, इसलिए वे शनिवार और रविवार को व्यापार नहीं करतीं।

सब्जियों का उत्पादन वे जैविक /ऑर्गेनिक तरीके से करने का प्रयास करते हैं। उनका मानना ​​है कि गुणवत्तापूर्ण और बिना रासायनिक अवशेष वाली सब्जियों की बाजार में अच्छी मांग रहती है, जिससे उन्हें बेहतर भाव प्राप्त होता है।

समूह से मिली प्रेरणा – नीलमबेन के लिए सक्षम समूह केवल बैठक में भाग लेने का माध्यम नहीं रहा, बल्कि यह उनके जीवन में सीखने, विचार साझा करने और नए अवसरों को समझने का मंच बना। मासिक बैठकों में नियमित भागीदारी से उन्हें यह समझ विकसित हुई कि सीमित संसाधनों में भी परिवार अपनी उपलब्ध जमीन व श्रम का बेहतर उपयोग करके आय का नया साधन विकसित कर सकता है।

इसी प्रेरणा ने उन्हें एक बीघा जमीन पर सब्जी की खेती शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया। खेती में नीलमबेन के साथ उनके पति विरसिंगभाई ने भी पूरी जिम्मेदारी से सहयोग किया।

विरसिंगभाई पिछले तीन माह से वाग्धारा के ग्राम स्वराज समूह के सदस्य के रूप में भी जुड़े हुए हैं। इससे उनके परिवार की सामुदायिक जुड़ाव व सीखने की प्रक्रिया को और मजबूती मिली है।

नौकरी का अवसर आया, लेकिन चुनी खेती – सब्जी की खेती से मिल रहे अनुभव और आय ने विरसिंगभाई का खेती के प्रति विश्वास बढ़ाया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण तब सामने आया जब लगभग एक माह पूर्व उन्हें माइक्रो फाइनैस कंपनी, झालोद में लगभग ₹. 19,500 प्रतिमाह वेतन का ऑफ़र लेटर मिला।

एक समय था जब वे ₹. 14,500 प्रतिमाह की नौकरी के लिए अपने परिवार से 260 किलोमीटर दूर रहते थे। लेकिन अब उनके सामने ₹. 19,500 प्रतिमाह की नौकरी का अवसर था। इसके बावजूद उन्होंने नौकरी ज्यादा नही की।

उन्होंने खेती को अपना भविष्य बनाने का निर्णय लिया।

विरसिंगभाई का कहना है कि अब वे केवल खेती, विशेषकर सब्जी की खेती, को आगे बढ़ाना चाहते हैं। उनके लिए अधिक वेतन वाली नौकरी से ज्यादा महत्वपूर्ण है कि वे अपनी पत्नी, बच्चों और माता-पिता के साथ रह सकें व अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकें।

आज की स्थिति – आज विरसिंगभाई और नीलमबेन ने यह साबित किया है कि आत्मनिर्भरता के लिए हमेशा बड़ी जमीन या बड़ी पूंजी की आवश्यकता नहीं होती। यदि परिवार के सदस्य मिलकर मेहनत करें, उपलब्ध संसाधनों का सही उपयोग करें और बाजार की आवश्यकता के अनुसार उत्पादन करें, तो छोटी जोत भी नियमित आय का आधार बन सकती है।

उनकी कहानी में सबसे महत्वपूर्ण बदलाव केवल आय का नहीं, बल्कि जीवन की गुणवत्ता और पारिवारिक एकजुटता का है। पहले दोनों पति-पत्नी अलग-अलग स्थानों पर नौकरी करते थे और महीने में केवल एक बार मिल पाते थे। आज दोनों साथ मिलकर अपने खेत में काम करते हैं, रोजाना एक-दूसरे का सहयोग करते हैं और अपने बच्चों तथा माता-पिता के साथ रहते हैं।

परिणाम एवं प्रभाव – एक बीघा जमीन को सब्जी उत्पादन के लिए उपयोग में लाया गया।

- प्रतिदिन लगभग ₹.1,200 – ₹.1,500 तक सब्जी बिक्री का व्यापार हो रहा है।
- जैविक तरीके से सब्जी उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है।
- पति-पत्नी ने खेती के कार्यों का बेहतर विभाजन किया है।
- परिवार को गांव में रहकर आजीविका का अवसर मिला।
- बच्चों और माता-पिता की देखभाल के लिए दोनों साथ रह पा रहे हैं।
- नीलमबेन की सक्षम समूह में नियमित भागीदारी से सीखने और निर्णय लेने की क्षमता मजबूत हुई।
- विरसिंगभाई ग्राम स्वराज समूह से जुड़कर सामुदायिक प्रक्रिया में भाग ले रहे हैं।

- ₹. 19,500 प्रतिमाह की नौकरी का अवसर मिलने के बावजूद उन्होंने खेती को प्राथमिकता दी।

- परिवार ने खेती को केवल जीविका नहीं, बल्कि स्थायी और सम्मानजनक व्यवसाय के रूप में अपनाने का निर्णय लिया है।

विरसिंगभाई का संदेश – “नौकरी में अच्छी आय मिल सकती है, लेकिन परिवार से दूर रहना पड़ता था। अब हम दोनों साथ मिलकर खेती कर रहे हैं। बच्चों और माता-पिता के साथ रहने का सुख मिल रहा है। हमारा लक्ष्य है कि सब्जी की खेती को और बढ़ाएं और बच्चों को अच्छी शिक्षा दें।”

आय के साथ-साथ आने वाले वर्षों के बारे में भी सोचना शुरू किया।वर्ष 2026 में उद्यान विभाग के सहयोग से उन्होंने 30 फलदार पौधे लगवाए।इन पौधों को उन्होंने केवल पौधों के रूप में नहीं देखा, बल्कि आने वाले वर्षों की स्थायी आय, पोषण और खेत की विविधता में निवेश के रूप में अपनाया। आज उनके खेत में फसल, पशुधन, बकरी, वर्मी कम्पोस्ट, सोलर, ड्रिप, बायोगैस, जैविक उत्पाद और फलदार पौधे – सभी मिलकर एक ऐसी कृषि व्यवस्था तैयार कर रहे हैं, जिसमें आय के कई रास्ते हैं और बाहरी संसाधनों पर निर्भरता लगातार कम होती जा रही है।

पलायन से आत्मनिर्भरता तक का सफर – कुछ वर्ष पहले तक नाथी बेन और रमेश जी रोजगार की तलाश में मुंबई पलायन करते थे।आज वहीं परिवार अपनी 7 बीघा जमीन को आधार बनाकर खेती, पशुपालन, बकरी पालन, वर्मीकम्पोस्ट, सोलर सिंचाई, ड्रिप इरिगेशन, जायद की फसल, पारंपरिक बीज संरक्षण, बायो रिसोर्स सेंटर, बायोगैस और फलदार पौधों के माध्यम से अपने गांव में ही आजीविका के कई रास्ते तैयार कर चुका है। उनकी आय के विभिन्न स्रोतों ने परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जायद में मूंग से ₹.14,000 अतिरिक्त आय, दूध से ₹. 5,000–₹.7,000 प्रतिमाह, बकरी पालन से ₹.20,000–₹.25,000 सालाना तथा वर्मी कम्पोस्ट और केंचुओं से ₹.15,000–₹.17,000 सालाना आय ने परिवार को पहले की तुलना में अधिक आर्थिक स्थिरता दी है। वहीं बायो रिसोर्स सेंटर के माध्यम से तैयार पारंपरिक दवाइयों की बिक्री ने आय के एक नए रास्ते की शुरुआत की है।यह बदलाव केवल आर्थिक नहीं है। यह सोच में आए बदलाव का परिणाम है। नाथी बेन ने साबित किया कि पलायन हमेशा मजबूरी का अंतिम समाधान नहीं है। यदि गांव में उपलब्ध संसाधनों को पहचाना जाए, खेती को समझा जाए, सरकारी योजनाओं का लाभ लिया जाए और परिवार मिलकर मेहनत करे, तो गांव में रहकर भी सम्मानजनक और आत्मनिर्भर जीवन बनाया जा सकता है। नाथी बेन ने दिखाया कि यदि स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक तकनीक, सरकारी योजनाओं और उद्यमिता के साथ जोड़ा जाए, तो खेती को फिर से एक मजबूत, सम्मानजनक और टिकाऊ आजीविका बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष – नाथी बेन की कहानी केवल एक किसान की सफलता की कहानी नहीं है। यह पलायन से स्वावलंबन, बाजार आधारित सोच से पारंपरिक खेती, एकल आय से बहुआयामी आय और खेती से ग्रामीण उद्यमिता तक की यात्रा है। उनकी कहानी यह सिखाती है कि किसान यदि अपनी मिट्टी, पानी, बीज, पशुधन और पारंपरिक ज्ञान की ताकत को पहचान ले और उसे आधुनिक तकनीक एवं सरकारी योजनाओं से जोड़ दे, तो गांव में रहकर भी परिवार का भविष्य बदला जा सकता है।



वनोपजों के अनुमानित भाव : नीमकड़, मंडी में विभिन्न वनोपज के भाव नीचे दिए गए हैं –

फसल	न्यूनतम भाव	अधिकतम भाव	औसतन भाव	फसल	न्यूनतम भाव	अधिकतम भाव	औसतन भाव	फसल	न्यूनतम भाव	अधिकतम भाव	औसतन भाव
जौ	2580	2855	2700	मैथी	4810	8800	6400	अश्वगंधा	12000	26667	18000
रागी	2800	3000	2900	धनिया	10000	15500	14200	तुलसी बीज	4300	8000	7450
चना	5000	6200	6000	अजवाइन	9500	15521	12200	घिया बीज	8500	20200	18500
मुंगफली	5000	7700	7100	सूखी लालमिर्च	12000	16500	14200	धतूरा बीज	11000	15000	15000
अलसी	9500	10027	9900	लहसुन	6100	21300	14000	सुखी हल्दी	12000	16000	14000
तिल्ली	4001	12400	11200	प्याज	800	2812	2000	सरसों	3000	5400	7811

ध्यान दें : ये भाव अनुमानित हैं और मंडी में फसल की गुणवत्ता और मांग के अनुसार बदल सकते हैं। किसी भी लेन-देन से पहले मंडी में वर्तमान भाव की पुष्टि करना आवश्यक है।






अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें –
वागड रेडियो 90.8 FM, मुकाम-पोस्ट कुपड़ा, वाग्धारा केम्पस, बाँसवाड़ा (राज.) 327001
फोन नम्बर है – 9460051234 ई-मेल आईडी – radio@vaagdhara.org

यह “वातें वाग्धारा नी” केवल आंतरिक प्रसारण है।

संकलन एवं सहयोग : **जागृती भट्ट**

